1. शंकर जनन - उपनयन संस्कार

दक्षिण भारत की पश्चिमी सीमा पर मलाबार अंचल है, जिसे केरल प्रान्त कहते हैं। जहाँ के कालड़ी नामक ग्राम में वेद शास्त्र विशारद नम्बूदरी शाखा के एक ब्राह्मण शिवगुरु अपनी धर्म पत्नी आर्यम्बा के साथ निवास करते थे। सन्तान विहीन दंपति ने उत्तम पुत्र-प्राप्ति की कामना के लिये परमेश्वर की पूजा-पाठ और प्रार्थना श्रद्धा-भक्ति से की। उनके पूजा-पाठ और प्रार्थना से संतुष्ट होकर परमेश्वर ने सपने में ब्राह्मण दंपति को दर्शन दिया और कहा कि, ''आर्यम्बा-शिवगुरु, आप ध्यान पूर्वक सुनिये। अल्पायु, केवल आठ वर्ष जीवित उत्तम पुत्र चाहिये या दीर्घायु, पाखण्ड-मन्दबुद्धि-अनपढ़ पुत्र चाहिये? सोच लीजिये।'' ब्राह्मण दंपति ने परमेश्वर को प्रणाम करके कहा - ''हे महादेव, अल्पायु होने पर भी हमें उत्तम पुत्र प्राप्त करने की कामना है, अनुग्रह कीजिये।'' परमेश्वर ''तथास्तु'' कहकर आशीर्वाद देकर अदृश्य हो गये। परमेश्वरानुग्रह के अनुसार वैशाख शुक्ल पंचमी, पुनर्वसु नक्षत्र में ब्राह्मण शिवगुरू के घर उत्तम पुत्र का जन्म हुआ। उनकी पुत्रोत्पत्ति की इच्छा सफल होने पर वे अत्यंत संतुष्ट हुए। अपने आचार्यवर्य और बड़ों से सलाह लेकर ब्राह्मण दंपति ने शिशु का नामकरण संस्कार किया तथा 'शंकर' नाम रखा। शंकर के तीसरे वर्ष में पितृ-वियोग से मां-बेटे बहुत दुखी हुए। पांचवे वर्ष में आर्यम्बा ने अपने बन्धुवर्ग के सानिध्य में शंकर का उपनयन करवा दिया। ब्रह्मोपदेश के पश्चात् नियमानुसार एकाग्रता से शंकर सन्ध्यावंदन और गायत्री मन्त्र पुरश्चरण श्रद्धा-भक्ति के साथ करने में सफल हुए। ब्रह्मचर्य के नियमानुसार भिक्षाटन करते हुए शंकर ने एक ग़रीब ब्राह्मण के घर पधारकर **'भवति भिक्षां देहि'** पुकारते हुए भिक्षा मांगी। ब्राह्मण की पत्नी यह सुनकर बहुत दुखी हुई, क्योंकि घर में भिक्षा देने के लिये कोई वस्तु नहीं थी और उनके पति भी उस समय घर पर नहीं थे। फिर भी उस भिक्षुक को खाली हाथ भेजने की इच्छा न होकर घर का हर कोना ढूँढ़ने से उसे एक सूखा आँवला मिला। रोते हुए उस गृहिणी ने कहा ''क्षमा करो महाराज, घर में खाद्य पदार्थ कुछ भी नहीं है। कृपया इस सूखे आँवले की भिक्षा स्वीकार करें'', ऐसा कहकर उस सूखे आँवले को भिक्षा में दे दिया। भिक्षा स्वीकार करने के बाद उस घर का दारिद्र्य देखकर शंकर अत्यंत दुखी हुए और इस दारिद्रय की समस्या पर विचार करने लगे। फिर उन्होंने दृढ़ संकल्प और एकाग्रता से '**अंगम् हरेः पुलकमाश्रयन्ति.....**' इत्यादि बाईस श्लोकों से महालक्ष्मी देवी की प्रार्थना की। शंकर की प्रार्थना सुनकर महालक्ष्मी ने प्रसन्न होकर उनकी इच्छानुसार अत्यन्त ग़रीब ब्राह्मण के घर में कनक-वर्षा का अनुग्रह किया। देवी महालक्ष्मी के अनुग्रह से उस ब्राह्मण का घर धन-धान्य और सर्व सौभाग्य से भर गया तथा उन सभी ने मिलकर महालक्ष्मी देवी को भक्तिपूर्वक प्रणाम किया। इस घटना पर शंकर पूर्ण संतुष्ट हुए। ये बाईस श्लोक '**कनकधारा स्तोत्र**' के रूप में आज भी प्रसिद्ध है ।

2. तत्काल सन्यास स्वीकार

एक दिन जाबाली आदि कई मुनिवर कालड़ी क्षेत्र आकर आर्यम्बा और शंकर के दर्शन से कृतार्थ होकर उनसे विदाई लेकर स्वस्थान लौटे। परमेश्वर स्वरूप शंकर इन ऋषि-मुनियों को देखकर संतुष्ट होते थे। एक दिन आठवें बरस में जब शंकर अपनी माँ के साथ पूर्णा नदी में स्नान कर रहे थे तो एक मगरमच्छ शंकर के पैर पकड़कर पानी में खींचने लगा। भय से चिल्लाकर शंकर ने माँ से कहा ''माँ, एक मगरमच्छ मेरा पैर पकड़कर पानी में खींच रहा है। अगर आप मुझे सन्यास स्वीकार करने की आज्ञा दें तो मैं इस मगरमच्छ द्वारा आनेवाली मृत्यु से बच जाउँगा'' और वह ''माँ, सन्यास दो', 'माँ, सन्यास दो'', - कहकर चीत्कार करने लगे। सन्यास की
बात सुनकर आर्यम्बा बहुत दुःखी हुई लेकिन उसे सोचने का भी समय नहीं था। किसी भी हाल में शंकर को जीवित देखने के लिये आर्यम्बा ने सन्यास स्वीकार करने की आज्ञा दे दी। माता की आज्ञानुसार शंकर ने तत्काल सन्यास स्वीकार किया। अगले ही क्षण में शापग्रस्त मगरमच्छ ने शंकर के पैर छोड़कर गन्धर्व के रूप में शंकर के सामने प्रत्यक्ष होकर प्रणाम किया और शंकर से विदाई लेकर अपने लोक चला गया। शंकर अपनी माँ के शेष जीवन के लिये बन्धुवर्गों में सारे प्रबन्ध करने में सफल हुए। तत्पश्चात् माँ के पूर्णानुग्रह और आशीर्वाद से उत्तर दिशा में नर्मदा नदी के तट पर स्थित ओंकारेश्वर की एक गुफा में समाधिमग्न गुरू श्री गोविन्दपाद के दर्शन के लिये अकेले पदयात्रा करते हुए निकल गये।

3. सद्‌गुरु श्री गोविन्द भगवत्पाद दर्शन

केवल आठ वर्ष के बालक शंकर ने सन्यास स्वीकार करने के बाद उत्तम गुरु के सानिध्य की प्राप्ति के लिये नर्मदा नदी के तट पर स्थित ओंकारेश्वर की एक गुफा में निवास कर रहे श्री गोविन्दपाद के दर्शन के लिये कालड़ी से पैदल निकले। कुछ महीने बाद शंकर नर्मदा नदी के तट पर निवास कर रहे गुरु के आश्रम पहुँचे। आश्रम के बाहर उपस्थित व्यक्तियों से पूछताछ करते ही वे इस बालक सन्यासी की मीठी-मीठी बातों से आनंदित होकर फौरन अंदर जाकर आश्रमवासियों और ऋषि-मुनिवरों को बाल यति के आगमन का समाचार दे दिया। वे सब लोग अनिरीक्षित आगामी तेजस्वी बाल यति को आश्रम के मुख्य द्वार पर देखकर अत्यन्त आनन्द से, प्रेमाभिमान और सादरपूर्वक आश्रम में ले गये और उनके रहन-सहन का पूरा प्रबन्ध किया। शंकर के आगमन से आश्रम में हर एक के मन में एक अलौकिक अनुभूति, आत्मानन्द और प्रसन्नता फैल गई। शंकर के आश्रम में आने के कुछ दिन बाद नर्मदा नदी में अचानक बाढ़ आ गई, जिसके भीषण प्रवाह से आश्रमवासी भयभीत और कंपित हो गए। शंकर ने आश्रम की सुरक्षा को अपना पहला कर्तव्य मानकर उन सब लोगों को निर्भीक होने का आश्वासन दिया और अपने दृढ़ विश्वास के साथ उन्होंने नर्मदा को अपने कमण्डल में प्रविष्ट होकर स्थिर हो जाने की प्रार्थना की। जल की धारा सहसा पतली होकर कल कल ध्वनि के साथ तीव्र गति से कमण्डल में प्रविष्ट होने लगी। शंकर की अद्‌भुत योगसिद्धि को देखकर सभी लोग स्तंभित रह गये। वे आपस में विचार करने लगे कि यह बालक कोई साधरण नहीं, बल्कि कोई सिद्ध पुरुष ही होगा, जिसने अपनी बुद्धिकुशलता और समझदारी से इस विपत्ति से लोगों को बचाया है। वे अपने आप को भाग्यशाली मानकर गुरु-दर्शन के लिये उनके निवास-स्थल पहुँचे। गुरु गोविन्द भगवत्पादाचार्य के चरणों में प्रणाम करने के बाद विनम्रता से शिष्यों ने बाल यति और उनकी अद्‌भुत शक्तियों के बारे में विस्तार से बताया। गुरुजी शिष्यों का निवेदन श्रद्धा से सुनकर परमानन्दित हुए और उनको अपने गुरुवर गौडपादाचार्य का आदेश याद आया। नर्मदा नदी के प्रवाह को बंधित करने वाला यह बालक स्वयं भगवान शंकर जी के अंशावतार पुरुष हैं। यह सोचते हुए बाल यति को उनके समक्ष बुलाने का आदेश दिया। कुछ ही क्षणों में शंकर गुरु के पास पहुँच गये। शंकर को देखकर गुरु ने हर्षित होकर पूछा "हे बाल सन्यासी, आप कौन हैं? कहाँ से आये हैं? यहाँ आने का क्या कारण है? समाधान करें।" गुरुवर्य की मधुर वाणी सुनकर शंकर ने परमानन्द से गुरु के चरणों में साष्टांग प्रणाम किया ।

4. सक्रम सन्यास स्वीकार

विनम्रता और भक्तिपूर्वक शंकर ने कहा "सद्‌गुरुवर्य, मेरा प्रणाम स्वीकार कीजिये। गुरु, धरती, एवं सकल जीवराशि परब्रह्म का स्वरूप है। **'ब्रह्ममयं जगत् सर्वम्'**। ब्रह्ममय इस जगत् में, मैं भी ब्रह्म हूँ।" बाल यति का उत्तर सुनकर गुरु गोविन्द भगवत्पादाचार्य संतुष्ट हुए और तत्काल सन्यासी को विधि पूर्वक सन्यास की दीक्षा
का अनुग्रह किया। परमानन्दभरित शंकर ने दीक्षा के बाद अपने गुरु के चरण-स्पर्श कर प्रणाम किया। श्री गोविन्द भगवत्पादाचार्य के आशीर्वाद से शंकर चतुर्वेद-वेदांगोपनिषद -वेदान्त-मीमांसा-तर्क आदि सकल शास्त्रों में पारंगत हुए और साक्षात् देवी सरस्वती के रूप में विराजमान हुए। शंकर ने गुरु की सेवा करने के लिए आश्रम में उनके साथ दो-तीन वर्ष व्यतीत किये ।

5. वाराणसी सन्दर्शन

शंकर के बारे में श्री गोविन्द भगवत्पादाचार्य विचार करने लगे और उनसे कहा कि "आपके इस अवतार का ध्येय और उद्देशित कर्तव्य निभाने में किसी प्रकार का अवरोध नहीं होना चाहिए। अखण्ड दिगविजय प्राप्त होनी चाहिए। सनातन-धर्मोद्धार, वेदोद्धार, वैदिक- मतोद्धार आदि करने में संपूर्ण सफलता के लिये काशी विशालाक्षी-विश्वनाथ का दर्शन आपका प्रथम कर्तव्य होगा। आदि दंपति के पूर्वानुग्रह से ही वाराणसी क्षेत्र में कार्याचरण का प्रारंभ उचित और सर्वोत्कृष्ट होगा। विश्वनाथ-विशालाक्षी आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। वाराणसी जाने का पूरा प्रबन्ध करें।" गुरुवचन सुनकर शंकर ने

''आपकी आज्ञा शिरोधार्य है। आपकी आज्ञानुसार मैं वाराणसी क्षेत्र जाऊँगा। आशीर्वाद दीजिये'' ऐसा कहकर गुरुचरणों में सिर रखकर प्रणाम किया। गुरुजी ने उन्हें प्रेम से उठाकर सिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद देकर विदाई की। शंकर के साथ कई आश्रमवासी और ऋषि-मुनिवर भी वाराणसी के लिए चले। कुछ ही दिनों में वे सब वाराणसी पहुँचकर गंगा नदी में स्नान करने के बाद विश्वेश्वर दर्शन के लिये मंदिर की तरफ जा रहे थे, कि तभी रास्ते में एक चाण्डाल (साक्षत् महादेव) अपने परिवार के साथ चला आ रहा था, अतः उसका स्पर्श न हो जाए इस भय से संकुचित हो शंकर रास्ते के एक किनारे खड़े हो गये और चाण्डाल से रास्ता छोड़ देने को कहा। परन्तु चाण्डाल उसी प्रकार चलते हुए वेदान्त के उच्च तत्व कहने लगा। वह बोला,''कौन किसका स्पर्श करेगा? एक छोड़ दूसरी वस्तु ही कहाँ है? तुम किसके स्पर्श-भय से संकुचित हो रहे हो? आत्मा तो किसी का स्पर्श नहीं करती, उसका भी कोई स्पर्श नहीं कर सकता।'' चाण्डाल के मुख से ऐसे ज्ञान की बात सुनकर शंकर अद्वैतबोध और अपने व्यवहार की असंगति को समझकर लज्जित हो गये और तुरन्त आँखें बन्द करके एकाग्रता और दृढ़ भक्ति से **'जाग्रत स्वप्न.....चाण्डालोस्तु.....मनीषा मम'** इस प्रकार पांच श्लोकों में प्रार्थना की। अश्रुपूरित आँखें खोलकर देखने पर चाण्डाल की जगह विश्वेश्वर-विशालाक्षी ने परिवार सहित प्रत्यक्ष दर्शन दिया। इस दर्शन भाग्य से रोमांचित होकर शंकर ने साष्टांग प्रणाम किया। चाण्डाल रूप में विश्वेश्वर दर्शन के समय में रचित ये पाँच श्लोक आज भी **'मनीषा पंचकम्'** के नाम से सुप्रसिद्ध हैं। इन पाँच श्लोकों के पाठ द्वारा सच्चिदानन्द रूपी परमेश्वर के अनुग्रह और आत्मदर्शन प्राप्त होने में कोई सन्देह नहीं है।

6. गोविन्द नाम संकीर्तन महिमा

काशी में भागीरथी के तट पर व्याकरण पढ़ते हुए एक विद्यार्थी को शंकराचार्य ने देखा और सोचा कि भौतिक सुखों के लिये विद्यार्जन की आवश्यकता तो सही है। परन्तु परमार्थ के लिये भगवान का नाम-स्मरण व संकीर्तन की आवश्यकता भी पूरी तरह से होनी चाहिये। कलि के कुप्रभाव से बचने के लिये भक्ति-मार्ग की आवश्यकता पर भी आचार्यवर्य ने सोचा। उस विद्यार्थी के पास जाकर आचार्य खड़े हो गये। विद्यार्थी तो एकाग्रता से अपनी आँखें बंद करके विद्याध्ययन में निमग्न था। आचार्य ने मधुर स्वर से बालक को पुकारा। आवाज़ सुनकर बालक ने आँखें खोलकर अपने सामने खड़े हुए आचार्य को प्रश्नार्थक दृष्टि से देखा। तब आचार्य ने कहा, ''बालक, तुम क्या पढ़ रहे हो? पढ़ने से क्या फायदा होता है? बताओ।'' विद्यार्थी ने कहा ''हां, हां,
बताऊँगा। मैं व्याकरण का अभ्यास कर रहा हूँ। श्रद्धा से विद्याध्ययन करके परीक्षा में विशिष्ट योग्यता से उत्तीर्ण होकर वैयाकरणीय अर्थात् व्याकरण का पण्डित बन जाऊँगा। इस विशेष योग्यता के द्वारा मेरे जीवन में अत्यधिक धनार्जन के लिये मार्ग मिल जायेगा। गृहस्थी के लिये अधिक धन की आवश्यकता होती है। वस्त्र, वाहनादि भी प्राप्त हो जायेंगे। धनवान होने से अच्छी पत्नि तथा उत्तम संतान भी होगी। आजकल धन के बिना कुछ भी नहीं हो सकता। अर्थ-रहित जीवन तो व्यर्थ होता है।'' यह बातें सुनकर शंकर ने आजकल के विद्यार्थी के केवल धनोपार्जन के लिये विद्या सीखने के मनोभाव पर विचार करने लगे और कहा कि ''बालक, मेरे प्रश्न का तो तुमने उत्तर दे दिया लेकिन ध्यान से मेरी बात सुनो और सोचो। तुम अच्छी तरह पढ़ो, पढ़ने में कोई दोष नहीं है। परीक्षा में उत्तम श्रेणी में उत्तीर्ण होना भी बहुत अच्छी बात है लेकिन ज्ञान-रहित, संस्कार-रहित विद्या सीखने से कोई लाभ नही होता। विद्या ही मनुष्य का उत्तम भूषण है।**'विद्वान सर्वत्र पूज्यते**।' विद्वान जहाँ भी जाता है वहाँ उसकी विशेष मर्यादा के साथ पूजा होती है। विद्यार्जन के साथ एक और साधना की आवश्यकता है। वह है भक्ति-मार्ग। मनुष्य की मृत्यु के समय केवल भगवान का नामोच्चारण ही रक्षा करता है, विद्या नहीं। भक्तिहीन मनुष्य तो पशु समान है। जन्म से मरण तक काम, क्रोध आदि षट्विकार छाया की तरह अपने साथ ही रहेंगे। इनसे बचना आसान नहीं है। केवल भगवान के नाम-स्मरण-पूजन-ध्यान-संकीर्तन द्वारा ही इन शत्रुओं को जीता जा सकता है। कलिप्रभाव और इन शत्रुओं से बचने के लिये यह भक्ति मार्ग ही अत्यन्त सुलभ और उत्तम है, हे बालक, गोविन्द नाम संकीर्तन से तुम्हें सर्वाभीष्ट मिल जायेगा। काल हरण न करो। अभी इसी समय गोविन्द नाम संकीर्तन करने में निमग्न हो जाओ।'' इस प्रकार मानवोद्धार के लिये शंकराचार्य ने 'गोविन्द नाम संकीर्तन' का उपदेश दिया और **'भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढ़मते.....'** आदि तेरह श्लोकों द्वारा नामसंकीर्तन की महिमा का उपदेश दिया।

7. उपनिषद् - ब्रह्मसूत्र - भगवद्गीतादि की भाष्य रचना व वेद व्यास मुनि-दर्शन

द्रविड़ प्रान्त से वटु नरसिंह शर्मा शंकराचार्य के दर्शन के लिये वाराणसी क्षेत्र पहुँचे। शंकराचार्य के दर्शन से वे आनन्दविभोर हुए। भक्तिपूर्वक आचार्यवर्य को साष्टांग प्रणाम करके विनम्रता से हाथ जोड़कर वन्दन किया। आचार्य ने उनके बारे में परिशीलन करने के बाद उनमें उत्तम गुणों को देखकर उनको सन्यास-दीक्षा देने पर विचार करने लगे। बाद में उन्हें विधि पूर्वक काशी विश्वेश्वर के सानिध्य में सन्यास-दीक्षा प्रदान की और 'सनन्दनाचार्य' दीक्षा नाम का भी अनुग्रह किया। सनन्दनाचार्य को प्रधान शिष्य का स्थान भी दिया गया। शंकराचार्य के मन में उपनिषद्-ब्रह्मसूत्र-भगवद्गीतादि की भाष्य रचना करने का विचार आया। इस काम के लिये उन्हें अनुकूल एवं शान्त वातनावरण तथा उत्तम पुण्य-क्षेत्र की आवश्यकता थी। अचानक उन्हें बदरी-क्षेत्र के बारे में विचार आया और उसी समय वहाँ जाने का निर्णय भी कर लिया। कालयापन न करते हुए उन्होंने अति शीघ्र लिखने की सामग्री का प्रबन्ध करके एक दिन शुभ मुहूर्त में सनन्दनाचार्य आदि शिष्य परिवार के साथ बदरी-क्षेत्र दर्शन के लिये निकले। कुछ ही दिनों में बदरी क्षेत्र पहुँचकर बदरीनारायण का पूजा-पाठ विशेष रूप से किया। फिर भाष्य रचना के लिये वहाँ पर एक उचित प्रदेश चुनकर, शुभ मुहूर्त में बिना विघ्न के रचना पूर्ण होने का संकल्प करके कार्य प्रारम्भ किया। निर्विराम वे अपने कार्य में निमग्न हो गये। तीन वर्ष के अंदर संकल्पित भाष्य रचना का कार्य सफलतापूर्वक संपन्न हुआ। भाष्य रचना संपूर्ण होने पर परमानन्दभरित होकर बदरीनारायण का विशेष पूजा-पाठ करने के बाद उनसे विदाई लेकर अपने शिष्यों के साथ वाराणसी वापिस लौट आये। वहाँ जाह्न्वी नदी के तट पर शिष्यों द्वारा निर्मित पर्ण-कुटी में उनके साथ निवास कर रहे थे। शिष्यों को वेद-वेदांत-उपनिषद्- तर्क-मीमांसा इत्यादि सिखाते थे। एक दिन कुटी के सामने एक वयोवृद्ध मुनीश्वर ने आकर उनके शिष्यों से कहा ''मैं बहुत दूर से बड़ी मुश्किल से अकेला आया हूँ। मैं शंकराचार्य का दर्शन करना चाहता हूँ और उनके द्वारा रचित प्रस्थानत्रय भाष्यों को सुनना चाहता हूँ।'' उसी समय शंकराचार्य ने कुटी से बाहर आकर वयोवृद्ध मुनीश्वर को देखकर प्रणाम करके आदर से आमंत्रित किया। उन महान और महातेजस्वी मुनिवर को देखने पर शंकर सोचने लगे कि यह तो महामुनि वेद व्यास ही हो सकते हैं।

8. वेदव्यास द्वारा षोडश वर्ष आयुर्वृद्धि व विजय-यात्रा संकल्प

श्रद्धा और भक्ति के साथ शंकराचार्य ने वयोवृद्ध मुनीश्वर को अपनी भाष्य रचनाओं को सुनाया। उन्हें सुनकर परमानन्दभरित मुनीश्वर ने शंकर को अपने निज रूप का दर्शन कराया। शंकर ने वेद व्यास मुनि के दर्शन होने पर पुलकित हो साष्टांग प्रणाम किया। व्यासजी ने उन्हें उठाकर प्यार से कहा ''शंकर, अभी समय आसन्न हो गया है। सनातन-धर्म, वेद-धर्म का रक्षण तुम्हीं को करना चाहिए। धर्म पालन द्वारा अपना पवित्र भारत देश सुख-शान्ति-सौभाग्यादि से प्रकाशित हो जायेगा। इस धर्म-संस्थापन कार्य के लिये तुम विजय यात्रा की पूरी तैयारियाँ कर लो। विजय लक्ष्मी सदा तुम्हारे साथ रहेगी।'' इन पवित्र वचनों को सुनकर शंकर ने कहा, ''क्षमा चाहता हूँ मुनिवर। आपकी आज्ञा का पालन करना तो मेरा प्रथम कर्तव्य है और शिरोधार्य भी है। लेकिन मैं तो अल्पायु हो गया हूँ। केवल आठ वर्ष की मेरी आयु है। सन्यासाश्रम स्वीकार करने से और आठ वर्ष आयु बढ़ गयी है। कल मेरी आयु का सोलहवाँ वर्ष समाप्त हो रहा है। आप कृपा करके मुझे कैलास गमन की आज्ञा दीजिये।'' शंकर की बातें सुनकर मुनिवर हँसने लगे और कहा ''तुम कारण जन्मा हो। **'धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे'** यह तो गीताचार्य भगवान श्री कृष्ण ने कहा। तुम्हारा जन्म भी धर्म-संस्थापन के लिये हुआ है। साक्षात् शंकर को काल दोष नहीं होना चाहिए। तुम्हें और सोलह वर्ष की आयुर्वृद्धि दान रूप में, मैं दे रहा हूँ। अब तुम्हारी आयु का प्रमाण बत्तीस वर्ष हो गया है। तुम्हारे जन्म के लक्ष्य को कृतार्थ कर लो।'' यह बातें सुनकर शंकर बहुत खुश हुए और अपना आभार प्रकट किया। शंकर से विदाई लेकर व्यास मुनीश्वर अपने स्वस्थान लौट गये। उनके आदेशानुसार मानव कल्याण के लिये धर्म की देवी को प्रणाम करके शंकर ने निर्णीत शुभ मुहूर्त पर सनातन धर्म प्रचार के लिये विजय यात्रा की घोषणा की। आचार्य शंकर अपने शिष्यगण सहित आनन्दमग्न हो वाराणसी से निकले।

9. कुमरिल भट्ट समागम

ऋषि वेदव्यास के अनुग्रह से हो रही विजय यात्रा में शंकराचार्य को चार्वाक-पाशुपत- कापाली-शाक्तेय-वामाचार

और अवैदिक छोटे-मोटे मतों का खण्डन करते हुए अखण्ड विजय प्राप्त हुई। पाखण्ड मत गुरु वाद में शंकराचार्य के मेधाविलास, वाग्विलास, उपमान, विश्लेषण और इनकी भाषण शैली सुनकर चकित रह गये और उन्होंने अपने आप पराजय को स्वीकार कर लिया। प्रतिवादियों ने अपने अनुष्टित मत मार्ग को ग़लत समझकर शंकराचार्य के शिष्य बनकर उनके अनुष्ठित सनातन धर्म को स्वीकार किया। शंकर ने भी इन शरणार्थियों को अपना शिष्य स्वीकार किया।

बौद्ध मत के खण्डन द्वारा वेदोद्धार और सनातन धर्मोद्धार करने वाले कुमरिल भट्ट महाशय के बारे में जब शंकराचार्य ने सुना तो उनसे शास्त्रार्थ करने की इच्छा हुई। वे तुरन्त सनन्दनाचार्य आदि शिष्य गण के साथ भट्ट महाशय से मिलने उनके निवास स्थान प्रयाग को निकले। वहाँ पहुँचकर त्रिवेणी संगम में स्नान और अनुष्टान करने के बाद भट्ट महोदय के निवास स्थान पर जा पहुँचे और देखा कि वे तुषानल में स्थिर भाव से बैठे हैं। थोड़ी देर बाद ही उनका शरीर दग्ध होने वाला था। भट्टजी के प्रभाकरादि शिष्य यह भीषण दृश्य देखकर
अश्रुपात कर रहे थे। शंकर को घर आया देख भट्टजी प्रसन्न हुए और मानसिक प्रणाम किया। शंकर ने उनसे कहा ''मैं आपसे मिलने आया हूं। अपने आप को इतना कठोर दण्ड क्यों दे रहे हैं? इसका कारण क्या हो सकता है? अक्षम्य अपराध या घोर पाप तो आपने नहीं किया होगा। दया करके इस तुषानल से बाहर आ जाइये।'' यह सुनकर भट्ट ने शंकर से कहा- ''साक्षात् परमेश्वर का अवतार शंकर को देखने पर मेरे सारे पाप मिट गये हैं। आख़री वक्त पर मेरे उद्धार करने के लिये ही आप मेरे घर पधारे हैं। इस तुषानल में प्रवेश का कारण मैं अभी बताऊँगा। तब आप मेरे इस निर्णय की वज़ह समझ जायेंगे। मैं उत्तम ब्राह्मण कुल में पैदा हुआ था। सकाल में उपनयन संस्कार के बाद वेद, मीमांसा, कर्मकाण्ड और धर्म-शास्त्र का अध्ययन किया। बौद्धमत के प्रभाव से वेद-पण्डित और ब्राह्मणों का जीवन बहुत कठोर था। जीने के लिये उपाधी का कोई मार्ग या अवकाश भी नहीं था। सुधन्व राज्य बौद्ध मत का केन्द्र था। स्वयं राजा बौद्ध मत का अनुयायी था। इसको कैसे सुधारें? वैदिक-धर्म तथा सनातन-धर्म को बचाने का मार्ग सोचकर बौद्ध मत स्वीकार करने का निर्णय ले लिया। भिक्षुक बनकर बौद्ध मत का अध्ययन करने के लिये बौद्ध मत के गुरु के पास जाकर प्रणाम किया और शिष्य बनने की इच्छा प्रकट की। उनके कुछ प्रश्न पूछने पर मैंने सही उत्तर दिया। उन्होंने संन्तुष्ट होकर मुझे अपना शिष्य स्वीकार कर लिया। श्रद्धा से मैंने बौद्ध मत का अध्ययन किया। वेद-विरुद्ध भाष्य पढ़ते समय मैं बहुत रोता था लेकिन उस समय मुझे कुछ अन्य मार्ग भी नज़र नहीं आ रहा था। बौद्ध मत की शिक्षा पूर्ण होने पर मैंने गुरु से विदाई लेकर अपने निवास स्थान वापस आ गया। बाद में सुधन्व महाराज से मिलने के लिये राजधानी गया। थोड़े ही दिन में राजा से भेंट हुई और उनसे दरबार के पण्डितों से शास्त्रार्थ करने की अनुमति माँगी। पण्डितों की मंज़ूरी के बाद एक शुभ मुहूर्त पर शास्त्रार्थ प्रारम्भ हुआ। वेद के आधार पर बौद्ध मत का खण्डन करके उन पण्डितों को मैंने पराजित कर दिया। वे सब क्रोधित होकर सभा से बाहर निकल गये। बाद में उन्होंने राजा से मेरी शिकायत की। मुझे पाखण्ड, गुरु-द्रोही, नयवंचक और कपट-वेषधारी कहा। वेद पण्डित होकर केवल बौद्ध मत का खण्डन करने के लिये ही गुरु को वंचित करके अध्ययन किया और बौद्ध मत स्वीकार किया इसलिए न्याय शास्त्र के अनुसार ऐसे द्रोही को ज़रूर सज़ा मिलनी चाहिए। इस अभियोग को राजा ने सच मानकर मुझे गिरफ़्तार कर लाने का आदेश दे दिया। मैं राजा के समक्ष लाया गया और राजा ने पण्डितों के द्वारा लगाये गये अभियोग मुझे सुनाये। हँसते हुए मैंने राजा से कहा 'आपकी सभी बातों को मैं मानता हूँ। वेद और सनातन मतोद्धार के लिये ही मैंने यह काम किया। इसके लिये आप मुझे जो भी सज़ा देंगे वह मैं खुशी से स्वीकार करूंगा।' तब राजा ने मेरे इस घोर अपराध के लिये मृत्यु की सज़ा सुनाई। उसके बाद मुझे कारावास में बन्द कर दिया गया। मृत्यु-दण्ड नगर में उपस्थित पहाड़ के शिखर से नीचे ढ़केलकर गिराना था। इस दृश्य को देखने के लिये नगरवासी, आस-पास के ग्राम वासी, राजा और उनके सारे मंत्रीगण, बौद्ध गुरु आदि निर्णीत स्थल पर आ पहुँचे। राजभट मुझे वहाँ लेकर आये और निर्णीत समय पर जब राजा ने अपना हाथ उठाकर संज्ञा बतायी तब मैं शिखर से नीचे ढ़केल दिया गया। उपर से गिरते समय मैं 'वेद-धर्म सत्य हो तो मेरी रक्षा करो ' यह पुकारते हुए धरती पर आकर गिर पड़ा। धर्म देवता ने मेरी रक्षा की। मेरे शरीर पर कोई चोट नहीं लगी थी। गिरने के बाद मैं चुपचाप उठकर बाहर आ गया। सभी उपस्थित जन ने मेरी प्रशंसा की और राजा ने शर्मिंदा होकर मुझसे क्षमा माँगी और कहा कि उनका बौद्ध-धर्म असत्य है और वेद-धर्म ही सत्य है। उसी क्षण से उन्होंने उस राज्य में वेद- प्रतिपादित सनातन-धर्म की घोषणा की और बौद्ध धर्माधिकारियों और भिक्षुकों को देश से बहिष्कृत करने का आदेश दिया और वेद-धर्म का परिपालन करने की शपथ भी ली। तब मैंने अपने गुरु को देखा और बहुत दुःखी हुआ। उन्होंने मुझसे कहा 'तुम गुरु-द्रोही और पापी हो। तुमने अक्षम्य

अपराध किया है। तुम्हारी वजह से बौद्ध मत कलंकित हो गया। तुम में मेरे सामने खड़े होने की भी योग्यता नहीं है।' इस पाप का प्रायश्चित करने के लिये मुझे यह तुषानल प्रवेश ही उचित मार्ग लगा। इस आखरी क्षण में सद्‌गुरु दर्शन का सौभाग्य तो मेरा बहुत बड़ा सौभाग्य है।''

10. माहिष्मती नगरागमन

कुमारिल भट्‌ट महाशय ने कहा ''भगवान शंकराचार्यवर्य, आपके दर्शन से मैं पुनीत हो गया और आपको एक समाचार सुनाना चाहता हूँ। हमारे शिष्य मण्डन मिश्र का माहिष्मती में निवास है। वह एक महान्‌ पण्डित हैं। उन्होंने वेद-धर्म और कर्म-काण्ड का उद्धार किया है। आपकी शास्त्रार्थ करने की इच्छा वह पूरी कर पायेंगे। आप कृपा करके माहिष्मती जाकर उनसे मिलिये।'' मण्डन मिश्र के बारे में सुनने के बाद शंकराचार्य भट्‌ट महोदय से विदाई लेकर अपने शिष्यों के साथ माहिष्मती को निकले। वहाँ पहुँचकर मण्डन मिश्र के घर का पता करने लगे। रास्ते में एक विद्वान को पूछने पर उन्होंने बताया कि मण्डन मिश्र का घर ढूँढने में कोई दिक्कत नहीं है क्योंकि उनके घर के महाद्वार पर पिंजरों में दो तोते सदा वेद-पाठ करते रहते हैं। इस माहिष्मती नगर में यह अद्‌भुत बात सिर्फ इनके घर पर ही है। पण्डित के बताये हुए मार्ग पर चलते ही उनको तोतों के वेद-पठन की आवाज़ सुनाई दी। उस घर का महाद्वार बंद था। शंकर घर के सामने खड़े होकर वेदों का पठन सुनते हुए आनन्द उठा रहे थे। श्रुति-शुद्ध, अक्षर-शुद्ध वेद-पठन सुनकर आचार्यवर्य आश्चर्य चकित रह गये। वे सोचने लगे कि माहिष्मती सचमुच भाग्य का नगर है और मण्डन मिश्र एक महाज्ञानी, पण्डितराज, वेदाध्यायी और सत्कर्म निष्ठ भी हैं।

11. मण्डन मिश्र परिचय

मण्डन मिश्र के महाद्वार पर खड़े शंकराचार्य अंदर जाने के प्रयास में द्वार के पास गये। अंदर से मंत्र-पठन सुनाई दे रहा था और वह भी श्राद्ध के मंत्र थे। शंकर अपनी योग शक्ति से पीछे के मार्ग से घर में प्रवेश करके श्राद्ध कार्य के स्थान पर पहुँचे। वहाँ पर पितृ-कार्य के लिये आमंत्रित जैमिनि और व्यास मुनीश्वर उपस्थित थे और उनका पाद-प्रक्षालन कर रहे थे मण्डन मिश्र। उस समय मण्डन मिश्र पीछे के मार्ग से आये हुए बिना आमंत्रित सन्यासी को देखकर क्रोधित हुए। गुस्से में शंकर की कठोर वाक्यों से निन्दा करने लगे। शंकर भी हर बात का उत्तर देने लगे। वाद-विवाद बढ़ते-बढ़ते स्थायी रूप में पहुँच गया और परिस्थिति बिगड़ गयी। इस संदिग्ध समय पर मण्डन मिश्र को जैमिनि और व्यास मुनीश्वर ने बुलाया और कहा कि पितृ-कार्य के समय पर क्रोधित नहीं होना चाहिए। अभ्यागत अतिथि को सगौरव आमंत्रित करके उनको उचित मर्यादा देना गृहस्थ का धर्म है। उनकी निन्दा करना शोभा नहीं देता। यह अतिथि तो एक महान्‌ सन्यासी हैं। श्राद्ध के समय आया हुआ सन्यासी साक्षत्‌ विष्णु-स्वरूप होता है। इस महान्‌ सन्यासी को श्राद्ध-कर्म में विष्णु के स्थान पर बिठाकर श्रद्धा से श्राद्ध का कार्य संपूर्ण करने को कहा। श्राद्ध-कर्म शुरू होते समय शंकर ने मण्डन मिश्र से शास्त्रार्थ की भिक्षा माँगी। उन्होंने भी इनसे क्षमा माँगी और शास्त्रार्थ की भिक्षा भी प्रदान की। श्राद्ध-कर्म संपूर्ण होने पर जैमिनि और मुनीश्वर व्यास, मण्डन मिश्र और शंकराचार्य से विदा लेकर वापस लौट गये।

12. मण्डन मिश्र - शंकराचार्य शास्त्रार्थ आरम्भ

मण्डन मिश्र ने अपनी धर्म पत्नी उभय भारती देवी के साथ मर्यादा पूर्वक शंकराचार्य का दर्शन किया और उनको शास्त्रार्थ के लिये आमंत्रित किया। शुभ दिन और शुभ मुहूर्त तय करने के बाद महा पण्डितों, पुरप्रमुखों और सज्जनों को भी आमंत्रित किया। निर्णीत समय पर आमंत्रित सभी लोग सभाँगन में उचित आसनों पर विराजमान हो गये। मण्डन मिश्र के शिष्य-प्रशिष्य और बन्धु-मित्र वर्ग भी वहां उपस्थित थे। सब लोग वादि-प्रतिवादियों की प्रतीक्षा कर रहे थे। शंकराचार्य ने अपने शिष्यों के साथ सभा मंदिर में प्रवेश किया। ठीक उसी समय उभय भारती देवी के साथ मण्डन मिश्र ने भी प्रवेश किया। दोनों महात्माओं को एक साथ देखकर उपस्थित सज्जन हर्षित हुए और अपने आसन से उठकर उनको मर्यादा पूर्वक सादर प्रणाम किया। सभा मंच पर अपने निर्दिष्ट आसनों पर उनके उपस्थित होने के बाद सभा के सज्जन भी बैठ

गये। सभा में उपस्थित लोगों में से एक वृद्ध ज्ञानी पण्डित ने कहा ''अब सभा प्रारम्भ करने का समय आ गया है। आज होने वाले शास्त्रार्थ की विशेष प्रमुखता है। इसके लिये सभा की शर्तों को अधिक महत्व देते हुए निर्णयाधिकारी को चुनना होगा। सभी सज्जन ने समावेश होकर समालोचन करके उभय भारती देवी को निर्णयाधिकारी चुनकर अपना निर्णय घोषित किया। उन्होंने कहा कि वही एक प्रतिभाशाली, प्रज्ञाशाली और निष्पक्षपाती है जो इस कार्य को अच्छी तरह निभायेंगी। उनके बिना और कोई सामर्थ्यशाली इस सभा में नहीं हो सकता।'' इस निर्णय को सभागण ने पूर्ण सम्मति से आमोदित किया। तब उभय भारती देवी ने कहा "मुझे आपका निर्णय शिरोधार्य है। आपने मुझ पर एक बहुत बड़ा उत्तरदायित्व सौंपा है। मैं इस शास्त्रार्थ में निष्पक्ष निर्णय लूँगी। शास्त्रार्थ में हार-जीत तो अनिवार्य है। शर्त के बारे में मेरा निर्णय यह है कि अगर मण्डन मिश्र जीत जायेंगे तो शंकराचार्य को गृहस्थाश्रम स्वीकार करना पड़ेगा और अगर शंकराचार्य जीत जायेंगे तो मण्डन मिश्र को सन्यासाश्रम स्वीकार करना पड़ेगा।'' इस शर्त को सुनकर सभासद और मंच पर पधारे वादि-प्रतिवादियों ने भी अपना अनुमोदन सहर्ष प्रकट किया। तत्पश्चात् उभय भारती देवी ने दो फूलों की मालायें मँगाकर मण्डन मिश्र और शंकराचार्य को पहनाकर घोषित किया कि जिनके गले में पहनाई हुई माला यदि सूख जाती है तो उनको हार मान लेनी चाहिए। यह कहकर उभय भारती देवी ने सभा को प्रार्थना श्लोक से प्रारम्भ करने की आज्ञा दे दी।

13. शंकर विजय - मण्डन मिश्र पराजय

उभय भारती देवी के निर्देशन में शास्त्रार्थ प्रारम्भ हुआ। दोनों का वाद-प्रतिवाद कुछ समय तक सुमधुर; कुछ समय पर शेर का गर्जन और कुछ समय पर मेघ-गर्जन जैसा चल रहा था। इस शास्त्रार्थ में विषय-ज्ञान, सनातन-धर्म, वेदोपनिषद् आदि बहुत सारे विषयों पर हर रोज़ एक नये विषय पर शास्त्रार्थ करने से विद्यार्थियों को ज्ञानार्जन के लिये बहुत उपकारी था। चौदह दिनों तक हर रोज़ एक नये विषय पर वाग्विवाद चल रहा था और दोनों का बल समान था और हार-जीत का फ़ैसला करना बहुत मुश्किल हो गया था। 15वें दिन दोपहर के बाद वाग्विवाद की दिशा में बदलाव आ गया था। अचानक शंकराचार्य के प्रश्नों का मण्डन मिश्र सही उत्तर नहीं दे पा रहे थे। उनके दिये गये उपमानों और विश्लेषण शैली को समझने में मण्डन मिश्र को बहुत प्रयास करना पड़ रहा था। शाम तक उनकी गले की फूल माला की शोभा कम होते-होते सूख गयी। शंकराचार्य के गले की माला नयी शोभा से विद्यमान थी इसलिये उन्हें विजय घोषित किया गया। मण्डन मिश्र अपनी पराजय पर बहुत दुःखी हुए। शंकराचार्य की विजय पर पण्डितवर्य और पुर प्रमुख ने उनको हार्दिक बधाई दी, प्रशंसा की और उनको अपना गुरु मान लिया। उभय भारती देवी अपने पति को पराजित देखकर बहुत दुःखी हुईं। वह सभा में शंकराचार्य के सामने आकर बोलीं, ''मण्डन मिश्र जी को तो आपने हरा दिया लेकिन आपका संपूर्ण दिग्विजय अभियान अभी नहीं हुआ है। मैं उनकी धर्म पत्नी हूँ और आपको वाग्विवाद मुझसे भी करना चाहिए। अगर आप मुझे भी हरायेंगे तो संपूर्ण विजय आपकी ही होगी। दया करके आप मेरे साथ भी वाग्विवाद करने की कृपा करें'' कहकर सभा में घोषणा की।

14. कामसूत्र के बारे में देवी भारती का प्रश्न

उभय भारती देवी की घोषणा सुनकर सभाँगन में उपस्थित मान्य पण्डित, प्रमुख और सारे सदस्य स्तब्ध हुए। मगर शंकराचार्य मुस्कुराते हुए मर्यादापूर्वक उभय भारती देवी से बोले, 'देवी, आपका वाद सही है। मेरे साथ में आपके वाद-विवाद का मैं पूर्ण रूप से स्वागत करता हूँ। तब उभय भारती देवी ने कहा, ''सावधान होकर सुनिये आचार्यजी, कलाओं में चौंसठ कलायें सुप्रसिद्ध हैं। इन चौंसठ कलाओं में कोकशास्त्र का विशिष्ट स्थान है। कामसूत्र को विशिष्ट कला माना जाता है। यह कला सृष्टि का मूल कारण है और इस धरती के समस्त प्राणी इससे प्रभावित हुए हैं। यह कला मानव जीवन में शुक्ल और कृष्ण पक्ष में कई प्रकार से प्रभावित और परिणामकारी है। इसकी प्रस्तावना पर आपको संपूर्ण विवरण देना चाहिए।'' यह सुनकर आचार्य अपने कानों को दोनों हाथों से बंद करके, आंखें बंद करके 'शिव-शिव' कहकर 'हे भगवान, मैं इस प्रश्न का उत्तर कैसे दूँ' यह सोचने लगे। सभा में उपस्थित सभी सदस्य उभय भारती देवी का प्रश्न सुनकर निश्चेष्ट रह गये। क्षण में सुधारित होकर शंकर ने कहा ''आपका प्रश्न तो मेरे लिये जटिल है और इसका

संपूर्ण विवरण देने के लिये मुझे एक महीने की अवधि चाहिए।'' उभय भारती देवी ने आचार्य की अवधि-आज्ञा पर सोचकर एक महीने की अवधि की मंज़ूरी दे दीं और कहा कि, ''अगर एक महीने के बाद भी आप सही जवाब देने में विफल हो जायेंगे तो हार मानना पड़ेगा'' ऐसा कहकर वे सभा-मण्डप से बाहर निकल गईं। सभा में उपस्थित सभी सज्जन बाहर निकल गये और प्रशान्त वातावरण फैल गया। तब वहाँ आचार्य अकेले में बैठकर सोचने लगे। थोड़ी ही देर बाद वह मन में कुछ निर्णय लेकर वहाँ से निकले और माहिष्मती नगर छोड़कर अपने शिष्यगण के साथ पदयात्रा करते-करते एक महारण्य में पहुँचे। वहाँ पर एक सुरक्षित स्थान ढूँढते-ढूँढते उन्हें एक गुफा मिली। अचार्य ने उस स्थान को सुरक्षित समझकर वहाँ रहने का पूरा प्रबन्ध करने का शिष्यगण को आदेश दिया। शिष्यगण काम में लग गये और उस स्थान को निवास के योग्य बनाया और सोचा कि महारण्य के इस प्रान्त में कोई भी आने का साहस नहीं करेगा और सबसे सुरक्षित है। आचार्य बहुत खुश हुए और अपने शिष्यों को आराम करने के लिये विदा किया।

15. परकाया प्रवेश

योग-विद्या के द्वारा अमरुक भूपती के देहांत का समाचार प्राप्त होने पर आचार्यवर्य ने सोचा कि यही ठीक समय होगा परकाया प्रवेश करने का। पद्मपादादि शिष्यों के साथ समावेश होकर अमरुक भूपति के पार्थिव शरीर में परकाया प्रवेश करने की इच्छा प्रकट की और उनसे कहा कि ''परकाया प्रवेश के बाद मेरे भौतिक शरीर के रक्षण का कार्य पूरी श्रद्धा के साथ करना। भौतिक शरीर को गुफा के अंदर रखकर उसके रक्षण का पूरा बन्दोबस्त करना आपका प्रथम कर्तव्य होगा। मुझे एक महीने तक अमरुक के शरीर में रहना पड़ेगा। यह सदवकाश मेरे लिये बहुत अमूल्य है क्योंकि उभय भारती देवी के प्रश्न का उत्तर देने के लिये यह बहुत ज़रूरी है।'' फिर अपने शरीर को छोड़कर मृत्यु-शैया पर पड़े अमरुक भूपती के शरीर में प्रवेश किया। मृत शरीर में अचानक कंपन देखने पर उसके पास रोते हुए बन्धुवर्ग, मान्य सचिव और नगर प्रमुख सभी चकित हुए। थोड़ी ही देर में अमरुक भूपती पुनर्जीवित होकर अपनी आँखें खोलकर देखने लगे। वहाँ उपस्थित सभी लोग परमानन्दभरित होकर उन्हें उठाकर राज महल में ले गये और उनकी संपूर्ण विश्रान्ती का बन्दोबस्त किया। उनको अपनी बधाई और शुभकामनाएँ देकर सब लोग लौट गये।

16. राजगृह के रहस्य मन्दिर में समालोचन

राजा के शरीर में शंकर के प्रविष्ट हो जाने पर धीरे-धीरे उसमें जीवन के लक्षण प्रकट होने लगे। यह लक्षण देखकर प्रजा आश्चर्य चकित हो गई। राजगृह में महारानी और सचिव, मंत्री, सेनापति आदि अतीव उल्लास के साथ उनको राजमहल लौटा लाये। अमरुक के राज्य में अचानक चौर्य, परपीड़न, परनिन्दा का अपने आप में शमन हो चुका था और उसकी जगह शान्ति-सद्भावना की स्थापना हो चुकी थी। राज्य में सत्य, धर्मादि के मार्ग को लोगों के द्वारा अपनाये जाने से ऐसा लगने लगा था कि जैसे सभी देवी-देवता यहीं रहने लगे हैं। राज्य में सभी जगह यह विचार होने लगा कि महाराज के शरीर में किसी सिद्ध महापुरूष की आत्मा है, इसलिये हमारे राज्य में सुख, शान्ति और सौभाग्य है। महारानी ने सभी विद्वानों तथा पुर प्रमुखों से भी इस विषय पर समालोचन करने के बाद अगले कार्यक्रम के बारे में मंत्रियों से समालोचन हेतु आमंत्रित पत्र तैयार करने को कहा। पत्र तैयार कर सभी योग्य लोगों को रहस्य मंदिर में बुलवाया गया। निर्णीत समय पर महारानी भी उपस्थित हुईं तथा उपस्थित जन के बीच सभा में निर्णय लिया गया कि यह सिद्ध आत्मा महाराज के शरीर में शाश्वत रहने के लिये हमें सभी जगह से ढूँढ-ढूँढकर सिद्ध पुरुषों के शरीरों का दाह-संस्कार कर देना चाहिए,क्योंकि इस सिद्ध आत्मा का महाराज के शरीर में रहना इस राज्य के लिये, सुख-शान्ति के लिये तथा हम सभी के लिये अत्यन्त आवश्यक है। इस प्रकार का निर्णय लेकर आत्मा का महाराज के शरीर में स्थायी रूप से रहने का प्रबन्ध कर दिया गया और सभी राजभटों को महारानी ने आदेश दिया कि, ''इस राज्य के कोने-कोने में सिद्ध पुरुषों के भौतिक शरीरों को तलाश करके, पहचान करके, अगले ही क्षण उन मृत शरीरों का दाह-संस्कार कर दिया जाना चाहिए। अगर तलाश करने के समय किसी भी प्रकार का अवरोध आये तो भी दण्डोपाय से श्रद्धापूर्वक राजकीय कार्य किया जाना चाहिए। यह जिम्मेदारी आपकी है, अगर यह कार्य पूर्ण रूपेण सफल नहीं होता है, तो राजदण्ड भी कठिन होगा।'' इस प्रकार से महारानी ने आदेश जारी कर दिया।

17. भौतिक शरीर में शंकर का प्रवेश तथा लक्ष्मी नृसिंह स्तोत्र

शंकराचार्य को राजा अमरुक के शरीर में प्रविष्ट हुए एक महीना बीत चुका था। अतः आचार्यवर्य को इस विषय की सूचना देने के लिये सभी शिष्य राजा अमरुक के राजगृह के समीप पहुँचकर सुस्वर में **''तत्वमसि तत्वमसि, तत्वमसि राजन्''** कीर्तन गाने लगे। शंकराचार्य अमरुक के शरीर में प्रविष्ट हुए राजकार्य में निमग्न थे। थोड़ी देर बाद सुन्दर गीत-गान-सुधा सुनने से, अमरुक के शरीर में उपस्थित आचार्यात्मा जागरुक होकर अचानक उठने पर शरीर भूमि पर गिर पड़ा। द्वारपाल भाग-भागकर आये परन्तु शरीर निश्चेष्ट हो चुका था। राजभटों ने शरीर को उठाया और शरीर को मृत जानकर चिल्ला उठे। उनकी आवाज़ सुनकर राज परिवार के सभी लोग भगते हुए आये तथा राजवैद्य भी आ गया। परीक्षोपरान्त शरीर को मृत जानकर सभी शोक-संतप्त हो गये।

सुप्रशिक्षित सिपाहियों और राज-भटों ने राज्य में सभी स्थानों पर तलाश् की, सोचा कि कोई भौतिक शरीर मिले, जो किसी महापुरुष का हो, तो जलाने में सफलता मिले। आखिर ढूँढते-ढूँढते उन्हें एक गुप्त स्थान में शंकराचार्य का भौतिक शरीर मिल ही गया, परन्तु शंकराचार्य के शिष्यों तथा राजकर्मचारियों (सैनिकों) के बीच शरीर को लेकर संघर्ष होने लगा। शिष्यों को पराजित कर राजभटों ने शरीर को गुफा से निकाल कर चिता को तैयार कर शरीर को चिता पर रख आग जला दी। असहाय शिष्य रोने लगे और प्रार्थना करने लगे। उसी समय शंकराचार्य की आत्मा चिता पर रखे अपने मृत शरीर में प्रविष्ट हो गयी। चिता में लगी आग को देख, निश्चल भक्ति से, '**श्रीमत् पयोनिधि निकेतन.....लक्ष्मी नृसिंह मम देहि करावलम्बम्**' स्तोत्र करने लगे। शंकराचार्य की भक्ति पर प्रसन्न हो नृसिंह भगवान ने चिता की ज्वाला से उनकी रक्षा की। शंकराचार्य ने विनम्रता और भक्ति से नृसिंह भगवान को प्रणाम किया, उनके शिष्यों ने भी नमस्कार किया और नृसिंह अन्तर्धान हो गये। यह दृश्य देखकर राजभट भय से कांपने लगे और भाग खड़े हुए।

18. उभय भारती देवी का आवेदन

शंकराचार्य को एक महीने तक राजा अमरुक के शरीर में रहने के उपरान्त उभय भारती देवी के प्रश्न का उत्तर मिल गया था। अतः वह पुनः अपने शरीर में लौट आये। राजभटों के द्वारा चिता में लगायी गई आग के उपरान्त नृसिंह भगवान की सहायता से शंकराचार्य की रक्षा हुई। शंकराचार्य अपने शिष्यों सहित माहिष्मती नगर को पहुँचे तो उभय भारती देवी ने दूर से ही शंकराचार्य को अपने शिष्यों सहित आते देखा। जब वे मण्डन मिश्र के घर आ गये, तो दुःखी उभय भारती देवी अपने आप में लज्जित होकर कहने लगी, ''आचार्यवर, मुझे क्षमा कीजिये। मैं तो आपकी अपराधी हूँ, मैंने आपका अपमान किया है, आप तो सर्वज्ञ है अतः आप मुझे क्षमा करें।'' शंकराचार्य ने हँसते हुये कहा, ''देवी, आप अपराधी नहीं है, ये तो विधि का विधान था सो हुआ, चिन्ता न करें, दुःखी न हों।'' इस प्रकार से शंकराचार्य ने उभय भारती देवी को सांत्वना देते हुए उनके अन्तर्मन का समाधान किया। तब हर्षित होकर उभय भारती देवी ने कहा ''आचार्यवर, शास्त्रार्थ की शर्त के अनुसार आप मेरे पति का परिग्रहण कर उनको सन्यासाश्रम दें और मुझे अपने स्थान जाने की अनुमति प्रदान करें।'' वचनों के उपरान्त उभय भारती देवी ने शंकराचार्य को साष्टांग प्रणाम किया।

19. मण्डन मिश्र की सन्यास दीक्षा - भारत्यासह दक्षिणापथ आगमन्

शंकर जब अपने शिष्यों के साथ माहिष्मती नगर लौटकर आये तो देखा कि मण्डन मिश्र को वैराग्य हो गया है। अतःवह अब ज्ञान के लिये व्याकुल हुये जा रहे हैं। उधर उभय भारती देवी भी अपने प्रश्नों का उत्तर पाकर संतुष्ट हो चुकी हैं। अब वह शंकराचार्य से कहती है कि, ''हे शंकर, मेरे संदेह का समाधान तो हो गया, अब आप मुझे विदा करें तचा शर्तानुसार मेरे पति को सन्यास-दीक्षा देने की कृपा करें।'' तब शंकर ने कहा ''माँ, आप कैसी विदाई चाहती हैं? कहाँ जाना है आपको? अभी आपका काम पूरा नहीं हुआ है। आप भक्तों का कल्पतरु हैं, भक्त रक्षण के लिये आपको यहाँ रहना पड़ेगा। आपको भी हमारे साथ-साथ आना पड़ेगा क्योंकि पुण्य-क्षेत्र में आपकी प्रतिष्ठा हो चुकी है। आपके

निवास हेतु व्यवस्था भी कर दी गई है। अतः आप दया करके भक्तों का पालन करें।'' इस प्रकार से शंकर की बातों को सुनकर उभय भारती देवी ने मन्दहासपूर्वक अभय प्रदान किया।

उभय भारती देवी की आज्ञानुसार शंकर की वेदोक्त-पद्धति से सन्यास-दीक्षा दी तथा मण्डन मिश्र ने भी वैदिक प्रणाली के अनुसार अपना श्राद्ध, शिखासूत्र का त्याग, सिर का मुण्डन, गैरिक-वस्त्र धारण तथा पित्रदत्त नाम का त्याग करके सुरेश्वर के नाम से प्रसिद्ध हुए। उभय भारती देवी और अपने सारे शिष्यों के साथ शंकर ने माहिष्मती नगर से दक्षिण की तरफ प्रस्थान किया।

20. श्रृंगेरी क्षेत्रागमन

श्री शंकराचार्य उभय भारती देवी सहित अपने सभी शिष्यों के साथ माहिष्मती से दक्षिण देश में पश्चिमी पहाड़ों के उस प्रान्त में पहुँचे, जहाँ पर महर्षि विभाण्डक अपने पुत्र श्रृंगमुनि के साथ तपस्या में निमग्न थे। वहाँ के वातावरण से आँखों को बड़ा आनन्द तथा मन को बड़ी शान्ति मिली। उस स्थान का पर्यवेक्षण करते-करते शंकराचार्य जी की दृष्टि उस स्थान पर जा ठहरी जहाँ पर एक मेंढकी, सूर्य की अत्यन्त भीषण तपन में प्रसव बाधा से व्याकुल है, परन्तु शंकराचार्य उस समय घोर आश्चर्य में डूब गये, जब उन्होंने देखा कि, मेंढकी का परम शत्रु अर्थात् सर्प ही अपने फन के द्वारा उस मेंढकी के ऊपर छाया किये हैं जो प्रसव से पीड़ित है। सर्प के फन से प्राप्त छाया के कारण धूप का ताप कम हो गया, जिससे मेंढकी का प्रसव शान्ति से हो गया। सर्प भी शान्त चित्त होकर लौट गया। हृद्यंगमय दृश्य को देखकर गुरुवर कुछ चिन्तित से लगे।

21. श्रृंगेरी में शारदा पीठ स्थापना

प्राकृतिक शोभा से मंडित, तुंगा नदी का तट जहाँ असीम शान्ति और स्नेह मानो मूर्त रूप में विराजमान हों, ऐसा वह पुण्य-क्षेत्र जिसके बारे में सोचते हुए शंकराचार्य ने उभय भारती देवी से कहा कि ''शारदा पीठ कि स्थापन हेतु, सर्वश्रेष्ठ व सर्वोत्कृष्ट निर्माण हेतु, सामग्रि का प्रबन्ध करें।'' भारती देवी के द्वारा निर्णित शुभ मुहूर्त पर आमंत्रित पण्डितों, भक्तों और शिष्यों के द्वारा किये गये उद्घोष **'जय-जय जगदम्बे, जय-जय शारदे, जय-जय वाणी, जय वीणा-पाणी'** के बीच वेद-मंत्रों का उद्घोष तथा मंगलवाद्यों का स्वर और जपघोष के साथ वनदुर्गा मंत्र से देवी शारदा की प्राण-प्रतिष्ठा करने में शंकराचार्य कृतार्थ हुये। इसी शुभ अवसर पर भक्तोद्धार, भक्तहित, सनातन धर्मोद्धार, वैदिक धर्मोद्धार आचन्द्रर्क तक निभाने के लिये आदि पीठ, श्रृंगेरी पीठ की संस्थापना हुई। यह श्रृंगेरी पीठ भारत के दक्षिण प्रांत में स्थापित है जो जगत् के कल्याण का हेतु है।

22. हस्तामलक शिष्य परिग्रहण

आदि गुरु शंकराचार्य ने अपने धर्म प्रचार के समय एक मूक बटुक को देखा। शंकाराचार्य को देख उस बटुक के माता-पिता चरणों में गिर पड़े और कहने लगे - ''यह मेरा बालक जब से पैदा हुआ तब से कुछ बात ही नहीं करता है, गुरु के बताये अनुसार ब्रह्मोपदेश भी किया गया परन्तु कुछ लाभ नहीं हुआ। कुछ न कुछ सोचकर बैठा रहता है, समय पर स्नान-ध्यान, सन्ध्यावंदन, खान-पान कुछ भी नहीं करता, किसी कार्य में श्रद्धा नहीं दिखाई देता। इस प्रकार से बालक की हालत देख हम लोगों को डर लगता है, अतः आपसे निवेदन है कि आप बतायें कि यह कब ठीक होगा, हम पर दया करें गुरुवर।'' इस प्रकार से प्रार्थना की।

आचार्यवर्य ने मूक बालक को प्रश्नात्मक दृष्टि से देखा और पूछा, ''हे बालक, तुम कौन हो? तुम्हारी हालत ऐसी क्यों है? मुझे बताओ।'' आचार्यवर्य का यह पूछना मानो अमृत हो गया। वह मूक बालक हँसते हुए उठा और गुरु के चरणों में गिर पड़ा तथा उनके कमल- सदृश मुख को देखकर बोला, ''हे गुरुवर, यह पृथ्वी ब्रह्म स्वरूपा है और मैं भी

ब्रह्मस्वरूप हूँ।'' इस प्रकार से अपने प्रश्नों का उचित उत्तर सुनते हुए, शंकराचार्य समझ गये कि यह कोई साधारण बालक नहीं, ये तो ब्रह्मज्ञानी जान पड़ता है। यह तो परमज्ञानी है, महापुरुष है। शंकराचार्य ने बालक के माता-पिता से कहा कि ''आपका पुत्र तो ब्रह्मज्ञानी है। यह घर में रहने के योग्य नहीं है, अतः आप इसे मुझे दे दीजिये और आप चिन्ता न करें। इसे मैं सन्यास की दीक्षा देकर अपना शिष्य बनाऊँगा।'' इस प्रकार से शंकराचार्य ने उसके माता-पिता को सान्त्वना देते हुए आश्वासन दिया। शुभ दिन, शुभ मुहूर्त में विधिपूर्वक सन्यासाश्रम और हस्तामलकाचार्य दीक्षा नाम का अनुग्रह किया गया।

23. कांचीपुरागमन

एक दिन सन्ध्या के समय शंकराचार्य अकेले ही द्राविड़ देश में उपस्थित कामाक्षी-दर्शन के लिये कांचीनगर पधारे। नगरागमन के समय सर्वत्र शून्य वातावरण उपस्थित था। रास्ते में कहीं भी कोई प्राणी, पशु नहीं दिखाई दे रहा था। मानवों का आवागमन भी नहीं हो रहा था। तभी अचानक एक-दो आदमियों को देखा तो पुकारा, परन्तु वे आने के बदले भाग खड़े हुये। किसी से कुछ पूछा भी जाये तो कैसे? थोड़ी देर में एक वृद्ध महाशय भागते हुये आये तो शंकराचार्य ने उनकी तरफ मुखातिष होते हुए पूछा कि ''महाराज, आप सभी भाग क्यों रहे हैं? नगर में शून्यता क्यों छायी है? किस अज्ञात कारण से नगर का यह हाल हुआ है? दया कर मुझे सब बताइये।'' इस प्रकार से शंकराचार्य के पूछने पर वह वृद्ध ऊपर से नीचे तक देखते हुए बोला ''शायद आप पहली बार कांची नगर में पधारे हैं। इसीलिये आप कुछ नहीं जानते।'' शंकराचार्य चुप रहे। वृद्ध फिर बोलता है ''देवी कामाक्षी अपनी सखियों सहित नरभक्षण के लिये रात्रि में निकलती है और अपने सामने जो भी आये उसका भक्षण करती है, फिर वह किसी भी तरह अपने आपको बचा नही पाता है। इसी भय के कारण नगरवासियों में भय व्याप्त है। रात्रि के समय कोई घर से बाहर नहीं निकलता है, अपने-अपने घर के दरवाजे बंद कर प्राणों की रक्षा करते हुए रात्रि भर जागते रहते हैं। इस हालत से कब मुक्ति मिलेगी? देवी का यह उग्र रूप कब शान्त होगा? हम सब लोगों की यही प्रार्थना है कि माता कामाक्षी का यह उग्र रूप शान्त हो जाये और वे नगर का पालन करें। आप यहाँ रात्रि में मत रुकिये जल्दी से अपने प्राणों की रक्षा का प्रबन्ध करें।'' इस प्रकार से कहते-कहते अपने घर की दिशा में भाग खड़ा हुआ। शंकराचार्य यह सब हाल सुनकर सोचने लगे।

24. उग्ररूप में कामाक्षी देवी का दर्शन

श्री शंकराचार्य ने जब सुना कि इस कारण से नगर में शून्यता व्याप्त है तो वे कामाक्षी-मन्दिर जा पहुँचे और देवी कामाक्षी को प्रणाम कर वहीं मन्दिर में ही द्वार पर सो गये, यह सोचकर कि इससे अच्छा स्थान अन्यत्र नहीं जान पड़ता है। जैसे ही अर्ध रात्रि का समय आया देवी कामाक्षी अपने परिवार के साथ भक्षण हेतु तैयार हुईं। लाल वर्ण, लाल आंखें, लम्बी जिह्वा इस प्रकार भयानक रूप धारण कर वह द्वार पर आ पहुँची। जब देखा कि द्वार पर कोई मानव निद्रा में निमग्न पड़ा है तो क्रोधावेश में भरकर बड़ी ज़ोर से चिल्लायीं। ''अरे! मानव तू कौन है? यहाँ मेरा रास्ता रोककर क्यों सोया हुआ है? मेरे मार्ग में अवरोध क्यों कर रहा है? यह तेरा अक्षम्य अपराध है। मुझे बाहर जाने का रास्ता दे। तेरा यह दुस्साहस अशोभनीय है और तेरे लिये यह अहितकर होगा।'' इस प्रकार से घोर गर्जना की।

25. कांचीनगर में श्री चक्र की स्थापना

देवी कामाक्षी की घोर गर्जनोपरान्त श्री शंकराचार्य ने सावधानी से धीरे-धीरे अपनी आँखें खोली तो, सामने दवी कामाक्षी को खड़ा पाकर नमस्कार किया और शान्तचित्त हो पूछा, ''आप कौन हैं जो मुझे हटने की आज्ञा देती हैं? मैं तो नहीं हटूँगा। इस समय अर्धरात्रि में यह भयानक रूप धारण कर आपका बाहर जाने का क्या उद्धेश्य हैं? चिल्लाये बिना शान्ति से उत्तर देने की कृपा करें।'' देवी कामाक्षी ने कहा, ''मुझे बाहर जाने का कारण पूछने की तुझे आवश्यकता नहीं है। बस, ज़रूरी काम है इसलिये बाहर जाना चाहती हूँ। पहले तू रास्ते से हट जा और मुझे रास्ता दे।'' इस पर शंकराचार्य ने ज़ोर से हँसते हुए कहा ''आपके बारे में सम्पूर्ण जानकारी मुझे प्राप्त हो चुकी है, आप तो जगन्माता हैं, त्रिलोकमाता हैं।

आपके बिना इस नगर की प्रजा की रक्षा कौन कर सकता है। आपकी प्रजा आपसे भयाक्रान्त है। इस तरह से नर भक्षण का कार्य आपको शोभा नहीं देता, आप तो सबकी रक्षक है, भक्षक नहीं। आपकी हालत ऐसी क्यों है? मेरा मन आपके जप-तप और पूजा-पाठ के लिये तड़प रहा है। आप तो सभी की आश्रयदाता हैं। इस तरह से मार्ग-विरुद्ध होना अच्छा नहीं है। ये तामसी गुण आपकी कीर्ति, प्रतिष्ठादि को कम करनेवाला है। अतः माता दया करो, अपने पुत्र की बात मानो और मुझे क्षमा करो। कांचीनगर वासी आपके भक्त हैं, सेवक हैं, शत्रु नहीं हैं, असुर नहीं हैं। ये आपकी सन्तान हैं माता, इनका पालन करो; आप तो त्रिलोक रक्षकी है, सो इन सभी की रक्षा करना अपका धर्म है। अतः क्रोध त्याग कर अपने स्थान पर पधारिये।'' इस प्रकार से श्री शंकराचार्य ने लोकहित के लिये माता कामाक्षी से प्रार्थना की।

श्री शंकराचार्य की प्रार्थनोपरान्त माता धीरे-धीरे गर्भगृह में चली गईं। शंकराचार्य ने देवी को स्वस्थान में बैठने में सहायता की तथा उनके पूजा-पाठ और स्तोत्र-पाठ से माता कामाक्षी प्रसन्न हुईं। गर्भगृह में पीठ के सामने श्री शंकराचार्य ने श्री चक्र की स्थापना की, देवी के राजस्-तामस् गुणों को श्री चक्र में आकर्षित कर सत्व गुण की वृद्धि की। इस तरह से शंकराचार्य के प्रयास से कांची नगर पूर्ववत् शान्ति-सौभाग्य से भर गया। नगरवासियों ने शंकराचार्य की चरण-वन्दना की, उनकी महिमा का गुणगान किया। शंकराचार्य ने एक महीना तक नगर में रहकर आगम-शास्त्र और वेदोद्धार किया। एक सम्प्रदाय के अनुसार पूजा-विधि को निभाने के लिये वेदशास्त्र-आगमशास्त्र, पण्डितों और तेलुगु देशवासियों को पूजा-पाठ, शास्त्र-विधि के प्रकारादि का नियमन करने में सफल हुए।

26. कापालिक को वरदान

शंकर सभी मतों का खण्डन करते हुए श्रीशैल गये और वहाँ भी बहुत से लोगों ने उनका मत ग्रहण किया। जिसमें कि एक उग्रभैरव नामक कापालिक भी अपना मत छोड़कर शंकर का शिष्य बन गया। कापालिक सम्प्रदाय के लोग बड़े भयानक होने के कारण देश पर अपना प्रभाव जमाये हुये थे। वे मानव-खोपड़ी में ही अपना आहार, मद्यपान आदि करने के कारण तथा मानव-कपाल अपने पास में रखने के कारण कापालिक कहलाते थे।

उग्रभैरव नामक कापालिक ने सभी शिष्यों की अपेक्षा ज्यादा सेवा-सुश्रूषा कर शंकर का विश्वास जीत लिया और एक दिन उन्हें अकेला पाकर वह बोला, ''हे गुरुदेव! अलौकिक सिद्धियों की प्राप्ति के लिये मैंने भैरव की आराधना की थी, परन्तु किसी राजा या किसी योगी की बलि के अभाव में, मैं भैरव को प्रसन्न नहीं कर पाया जिससे मुझे व्याकुलता रहती है। ब्रह्मज्ञान से पूर्ण शान्ति मिलती है ये सच है, परन्तु मुझे सिद्धि पाने की लालसा अभी तक बनी हुई है। आप सर्वज्ञ हैं अतः अब आपको इस संसार से मोह नहीं है, इसलिये आप यदि अपने इस शिष्य के कल्याणार्थ अपनी निष्पाप देह की बलि दें, तो मेरा कार्य बन जयेगा और आपको दधीचि की भाँति अक्षय कीर्ति का लाभ भी प्राप्त होगा।'' चूँकि आचार्य शंकर स्वार्थ-बोध से रहित और निर्मल मन थे, इसलिये वह कापालिक की बातों में आ गये और 'तेरी इच्छा पूर्ण हो, भैरव(शिव) तुझसे प्रसन्न हों' ऐसा वरदान शंकर ने कापालिक को दे दिया।

27. भगवान् नृसिंह की कृपा से कापालिक का यमालय प्रस्थान

कापालिक को जब वरदान मिल गया तो वह आनन्द के सागर में तैरने लगा। उसके मन में अभी भी यह बात थी कि वह शंकर की बली देकर, भैरव को प्रसन्न कर वैदिक मत को हराकर अपने मत की प्रधानता चाहता था। इस प्रकार सोच-सोचकर खुश हो रहा था। पूर्व नियोजित कार्यक्रमानुसार अमावस्या की रात को कापालिक ने एक निर्जन वन में भैरव-पूजा आयोजित की, परन्तु शंकर ने सोचा था कि इस कार्य में शिष्यगण अवरोध न करें इसलिये उन्होंने कापालिक से कहा था कि 'जब रात में शिष्यगण सो रहे हों तब तुम मुझे संकेत कर बुला लेना' और कापालिक का संकेत पाकर शंकर धीरे से उठे और वन में जा पहुँचे। शंकर की दृष्टि में यह माया-संसार मिथ्या था। शरीर को भी वह एक भ्रम मात्र मानते थे और जब वे समाधि में लीन होते तो उन्हें देह की स्मृति का भान भी नहीं होता था। इसलिये वह योगासन में बैठ गये।

उधर जब पद्मपाद ने स्वप्न में देखा कि एक कापालिक गुरूजी की हत्या कर रहा है और वह अपने आसन पर नहीं हैं तो वह अपने गुरुभाइयों को जगाकर खोज में निकल पड़ा और जब ढूँढने पर गुरुजी नहीं मिले तो वह अधीर हो उठा और भगवान नृसिंहदेव का स्मरण करने से वह उसके शरीर में आविर्भूत हुए जिससे पद्मपाद के अंग-प्रत्यंगों में भयंकरता आ गई और गर्जन करता हुआ कापालिक के पास जा पहुँचा। उस समय कापालिक शंकर का मस्तिष्क काटने के लिये खड्ग लेकर तैयार था। पद्मपाद को जब इस प्रकार से भयंकर रूप में देखा तो कांप उठा परन्तु पद्मपाद ने देर न करते हुए उसके हाथ से खड्ग छीनकर उसका ही मस्तिष्क काट डाला और उनकी भयंकर गर्जना से पूरा वन गुंजायमान हो उठा। जिससे शंकर की समाधि भंग हो गई और वह नृसिंहदेव को पद्मपाद के शरीर में देख स्तुति करने लगे। नृसिंहदेव जब तिरोहित हो गये तो पद्मपाद का शरीर कुछ समय तक भूमि पर मूर्छित अवस्था में पड़ा रहा। गुरुभाइयों की सेवा से उनकी मूर्छा भंग हुई। आचार्यदेव कापालिक के वध से दुखी हो पद्मपाद पर क्रोध करने लगे। परन्तु पद्मपाद विचलित हुए बिना बोले, ''गुरुहत्या को उद्यत व्यक्ति का वध करके मैं सैकड़ों बार नरक जाने को तैयार हूँ। आपसे जगत् का परम कल्याण होना है इसलिये आपकी रक्षा के निमित्त नरक भोग करना मेरे लिये साधारण बात है।'' इस घटना से पद्मपाद के प्रति सभी के मन में श्रद्धा का प्रादुर्भाव हुआ।

28. तोटकाचार्योदय

एक दिन गिरि नामक एक शान्त और शिष्ट ब्राह्मण ने आकर शंकराचार्य का शिष्यत्व ग्रहण किया। उन्होंने गुरु सेवा को अपना मुख्य लक्ष्य मानकर सारा भार अपने कंधों पर उठा लिया और सोचा कि इससे अन्य गुरु भाइयों को पर्याप्त अध्ययन का समय मिलेगा। गिरि गुरु-भक्ति का प्रतिरूप थे जिनका सर्वस्व केवल गुरु थे। प्रातः ब्रह्ममुहूर्त में उठकर नित्य क्रिया से निवृत्त हो गुरु सेवा में लग जाना ही उनका मुख्य कार्य था। वह पूजा-पाठ आदि का पूरा प्रबन्ध करते, गुरुजी के वस्त्र धोते, भोजन बनाते और हर तरह से गुरु-सेवा में तत्पर रहते थे। परन्तु गुरु की सेवा में छाया के समान रहने पर भी उनमें शास्त्रों के प्रति कुछ विशेष रुझान नहीं दिखाई देता था।

शंकर के शिष्यगण में गिरि को छोड़ सभी शिष्य शास्त्रों के अध्ययन में, साधना में लगे हुए थे, इन सबके विपरीत गिरि शास्त्रों के प्रति उदासीन हो गुरु सेवा में ही लगे रहते थे। इसलिये अन्य भ्रातागण गिरि को हेय दृष्टि से देखते थे और उनका व्यवहार गिरि के प्रति कुछ ठीक नहीं था। वह गिरि को मूर्ख समझते थे, कहते थे कि इसको गुरु की सेवा के अतिरिक्त कुछ भी नहीं आता है। एक दिन जब शिष्यगण वेदान्त-पाठ के लिये तैयार हुए उसी समय गिरि नदी पर गुरु के कपड़े धोने के लिये गया था। शिष्यगण जब शंकर से वेदान्त-पाठ के लिये बोले तो शंकर ने कहा, ''तुम लोग थोड़ी प्रतीक्षा करो, जब गिरि कपड़े धोकर आ जायेगा तब पाठ प्रारम्भ होगा।'' यह सुनकर शिष्यों को कुछ बुरा-सा लगा और वे गिरि के संदर्भ में टीका-टिप्पणी करने लगे,यह सुनकर शंकर को बुरा लगा और शंकर सोचने लगे कि ये लोग गुरू-सेवा के बारे में कुछ भी नहीं जानते और वेद-वेदांग में पारंगत होकर भी अहंकारी हैं, अज्ञानी हैं। शंकर ने बैठे-बैठे ही नदी पर कपड़े धोने गये गिरि को ब्रह्मविद्या प्रदान कर दी। गिरि उस समय नदी से कपड़े धोकर लौट रहे थे कि उन्हें लगा जैसे कोई अज्ञात शक्ति उनके शरीर में प्रविष्ट हो गयी है। जिससे उन्हें संपूर्ण जगत में चेतना का बोध होने लगा। यह उनकी गुरु सेवा ही थी कि उन्हें एक क्षण में सर्व शास्त्रों का ज्ञान, सारी साधनाओं का फल अचानक मिल गया। जब वह गुरु के समीप पहुँचे उस समय उनके मुखमण्डल पर ब्रह्मतेज उद्भासित हो उठा और अपने मन में वेदान्त के कुछ सार मर्म प्रकाशक श्लोकों की तोटक छन्द में रचना कर उनकी आवृत्ति करने लगे, **''विदिताखिल शास्त्र सुधा.....हृदये कमले विमलं चरणं भव शंकर देशिक मे चरणम्''** इसी प्रकार गाते नाचते हुए संपूर्ण विद्या निधि बनकर आये तो सभी गुरुभ्राता अवाक् रह गये और उनका अहंकार चूर्ण हो गया। गिरि ने अश्रुपूरित नयन से गुरु को साष्टांग प्रणाम किया। अपने आप को गुरु-चरणों में आत्म समर्पित किया जिससे गुरु भाव-विह्वल हो उठे और उन्होंने प्रेम से उठाकर गिरि को सन्यास देते हुए तोटकाचार्य नाम से दीक्षा दे दी। तब से गुरुसेवा-परायण गिरि का नाम तोटकाचार्य हुआ।

29. मातृवियोग -- तीन बार भारत-यात्रा

कालड़ी में आर्यम्बा की अंतिम यात्रा का समय आने पर उन्होंने अपने पुत्र शंकर को याद करते हुए कहा - ''पुत्र शंकर, मेरा अवसान का काल आ गया है, तू कहाँ है? तूने तो वचन दिया था कि 'मैं कहीं भी रहूँ, आपके अवसान के समय मैं आपके पास उपस्थित रहूँगा, किसी प्रकार की चिन्ता न करना', इस तरह मुझे आश्वासन दिया था। शंकर तू कहाँ है? जल्दी आ जा। मैं तेरी प्रतीक्षा में हूँ।'' उधर शंकर भी अपने मुख में मातृ-दुग्ध का स्वाद पाकर समझ गये कि माँ उनका स्मरण कर रही है। शिष्यों को मठ में ही छोड़ वे आकाश-मार्ग से क्षण-भर में माताश्री के सामने उपस्थित हो गये। मृत्युकालासन्न माँ काफी दिनों के पश्चात् अपने पुत्र का मुख देख अतीव आनन्दित हुईं। शंकर भी अपने कर्तव्यानुसार माँ की सेवा में लग गये। कुछ दिनों बाद अंतिम क्षण आ जाने पर शंकर ने अपने इष्टदेव विष्णु का स्मरण किया। शंकर की प्रार्थना से खुश होकर भगवान विष्णु ने प्रकट होकर दर्शन दिया जिनका दर्शन करते हुए माता आर्यम्बा वैकुण्ठलोक पधारीं।

शंकर ने जब अपने संबंधियों-सहित पण्डित को माँ के अंतिम संस्कार में सहायता के लिये कहा तो उन्होंने मना कर दिया। तब शंकर ने अकेले घर के प्रांगण में ही माँ की मृत देह के संस्कार के निमित्त अग्निदेव से प्रार्थना की, अग्निदेव ने प्रत्यक्ष होकर मृतदेह को भस्म कर दिया। जब सब लोगों ने यह दृश्य देखा तो वह शंकर के चरणों में आकर गिर पड़े और क्षमा माँगने लगे, कहने लगे - ''हम लोगों ने अज्ञान से आपका अपमान किया, आप तो महान् हैं, हम आपकी महिमा समझ नहीं पाये। हमारा अपराध अक्षम्य है, आप तो दया के सागर हैं, हम पर दया कर क्षमा कीजिये।'' इस प्रकार से प्रार्थना करने लगे। शंकर ने उनको क्षमा करते हुए धर्म-पालन तथा मानव-सेवा करने को कहा। बाद में शंकर विजय-यात्रा को निकल पड़े और गोकर्ण क्षेत्र में नीलकण्ठ महाराज को हराया, द्वारका में अवैदिक वैष्णव सम्प्रदाय को वैदिक मार्ग में निबद्ध किया, उज्जयिनि में भट्ट भास्कर की अवैदिक सम्प्रदाय को वादोपवाद से हरा वैदिक मार्ग में निबद्ध किया। ब्राह्मीक में जैन मत का खण्डन किया, कर्नाटक में भैरव-कापालिक मतों का और कामाख्या में नरगुप्त के वामाचरण का भी खण्डन किया, पाशुपत-क्षपणक-चार्वाक मतों का खण्डन करने के पश्चात् जगत् में वेद-धर्म, वेद-मार्ग, भक्ति और सनातन सम्प्रदाय का प्रबन्ध किया। सनातन-धर्म पालन और वेद-मार्ग के उद्धार हेतु शंकर ने तीन बार भारत की यात्रा की और वैदिक धर्म का प्रचार प्रसार किया।

30. ऋग्मता निवारण -- चतुर्मठ स्थापन

शंकर ने 'अद्वैतवाद' तथा वैदिक-धर्म-प्रचार करते हुए जब कामाख्या पहुँचकर एक वामाचार्य संप्रदाय के अभिनव गुप्त नामक तान्त्रिक नेता को तर्क-विचार में हरा दिया, तो उसने कपट-भाव से शंकर का शिष्यत्व ग्रहण कर लिया और ईर्ष्यावश 'अभिचार' क्रिया के द्वारा उनके शरीर में भगन्दर नामक रोग उत्पन्न कर दिया। जिसके
कारण अधिक खून निकलने से उनके वस्त्र गन्दे होने लगे तथा वे निर्बल होने लगे। उनके प्रधान चारों शिष्यों को जब पता चला तो उन्होंने अश्विनि देवताओं की प्रार्थना की जिसमें अपने गुरु की व्याधि-निवारण का भाव था। अश्विनिकुमारों ने प्रकट होकर दिव्यौषधि प्रदान की जिससे गुरु शीघ्र ही व्याधि मुक्त हो गये और संपूर्ण रूप से आरोग्य शरीर को पुनः प्राप्त किया। जिसके पश्चात् शंकर ने चतुर्पीठ की स्थापना की और अपने प्रधान चारों शिष्यों को उपस्थित करने के पश्चात् हर एक पीठ का नियम-निबन्धन, देवताराधन, पूजा-विधान सब पीठाधीष्यों को विवरण रूप में दिया। बाद में चारों पीठाधीश को चन्द्रमौलीश्वर स्फटिक लिंगों से अनुग्रह किया।

चतुर्पीठ -- विवरण

आदिपीठ - दक्षिणाम्नाय श्रृंगेरी शारदा पीठ :
पीठाधिपति श्री सुरेश्वराचार्य
रत्नगर्भ गणपति - चन्द्रमौळीश्वर, देवता - मलहानिकरेश्वर,वराहमूर्ति
शक्ति - शारदा, तीर्थ - तुंगा, यजुर्वेद, पूस्वाल संप्रदाय,
महावाक्य - अहं ब्रह्मास्मि, दीक्षानाम पुरि - भारति - अरण्य - तीर्थ।

पश्चिमाम्नाय पीठ - द्वारका कालिका पीठ :
पीठाधिपति श्री सनन्दनाचार्य (पद्मपाद)
चन्द्रमौळीश्वर - देवता - सिद्धेश्वर - शक्ति भद्रकाळि
तीर्थ - गोमति, सामवेद, संप्रदाय किद्वाला

महावाक्य - तत्वमसि, दीक्षानाम - तीर्थ - आश्रम

उत्तराम्नाय पीठ - बदरिकाश्रम जोतिर्मठ : पीठाधिपति श्री तोटकाचार्य

चन्द्रमौळीश्वर, देवता - नारायण, शक्ति - पूर्णगिरि, तीर्थ - अलकनन्दा

अथर्वण वेद, संप्रदाय - नन्दलाला

महावाक्य - अयमात्मब्रह्म, दीक्षानाम गिरि-पर्वत-सागर।

पूर्वाम्नाय पीठ - पूरि जगन्नाथ गोवर्धन पीठ : पीठाधिपति श्री हस्तामलकाचार्य

चन्द्रमौळि देवता - जगन्नाथ - पुरुषोत्तम, शक्ति - वत्सला

तीर्थ - महोदधि, ऋग्वेद, संप्रदाय - भोगवाल

महावाक्य - प्रज्ञानं ब्रह्म, दीक्षानाम - अरण्य - वन

इस प्रकार चतुर्वेद और चार आम्नाय पीठ स्थापना द्वारा, चारों शिष्यों को चारों पीठों में उपस्थित करके वेद-धर्म-भक्तिमार्ग-सनातन धर्मादि के रक्षण के लिये विशेष रूप में प्रबन्धित किया।

31. काश्मीर सर्वज्ञपीठारोहण

भारत देश में काश्मीर हिमालय पहाड़ पर स्थित है जो उन दिनों विद्या चर्चा के केन्द्र के रूप में विख्यात था। वहां एक विद्यालय था जहाँ सर्व शास्त्रों की विद्या दी जाती थी। काश्मीर में शारदा पीठ विद्या निधि और विद्या का सागर है, यहाँ सर्वज्ञपीठ सम्मानित है। पूर्व-पश्चिम और उत्तर द्वारों से महापण्डित लोगों ने यहाँ आकर वाद प्रतिवाद में जीतकर सर्वज्ञ की उपाधि प्राप्त कर ली थी। परन्तु दक्षिण से कोई पण्डित अभी तक दक्षिणी द्वार का उद्घाटन नहीं कर सके थे। शंकर ने सोचा कि उस पीठ पर आरोहण कर सर्वज्ञ की ख्याति पा लेने से काश्मीर में अनायास ही वैदिक धर्म तथा अद्वैत मत स्वीकृत हो जायेगा। ऐसा सोचकर वे अपने शिष्यों सहित शारदा पीठ का दक्षिणी द्वार खोलने को उद्यत हुए तो मन्दिर के पण्डितों ने उन्हें रोककर तर्क विचार करने का आह्वान किया तो शंकराचार्य ने सभी पण्डितों को वाद-विवाद में पराजित कर दिया और द्वार खोलकर सर्वज्ञ के समीप आ गये तो लोगों ने प्रश्न उठाया कि 'आप तो पर स्त्री गमन के कारण अपवित्र और कलंकित हैं अतः आप सर्वज्ञपीठारोहण की योग्यता नहीं रखते हैं।' तब शंकर ने कहा कि "मेरा शरीर परिशुद्ध है क्योंकि मैंने स्वशरीर को छोड़ राजा अमरुक के शरीर के माध्यम से पर स्त्री गमन किया था। इसलिये मेरा शरीर कलंकित कैसे हो जायेगा?" इस प्रकार जब शंकर ने उत्तर दिया तो सभी ऋषि लोग जय-जयकार करने लगे और शंकराचार्य का हाथ पकड़कर दक्षिण द्वार में प्रवेश के लिये उद्धत हुए और सर्वज्ञ पीठारोहण की उपाधि प्राप्त की। उसके बाद शंकर ने सोचा कैलास गमन का समय आ गया और अपनी आयु को देखते हुए शंकर कैलास पहुँचे। केदारेश्वर की पूजा-पाठ करने के बाद जब आयु बत्तीस वर्ष पूरी होने को आई तो पीठाधीशों और अपने अशेष शिष्यों को अपने कैलास गमन का विचार बता दिया। पद्मपादादि पीठाधीशों ने सादरपूर्वक प्रणाम किया और जैसा कि वेद-उपनिषदों का सारांश है, उसी प्रकार हम लोगों का भी कुछ न कुछ अनुग्रह कीजिये। शंकराचार्य ने भी शिष्यों के इच्छानुसार पंचश्लोकी का उपदेश किया।

१. प्रत्येक दिन वेद-पाठ आवश्यक है।
२. वेद-धर्माचरण प्रथम कर्तव्य है।
३. निष्काम कार्याचरण की प्रधानता।
४. जिह्वा-चापल्य का निग्रह और मिताहारी होना।
५. एकान्त में ध्यान की आवश्यकता है।

इन पांच सूत्रों के पालन के साथ-साथ वेद-धर्म के रक्षण के लिये निर्विराम कृषि प्रथम कर्तव्य है।

32. शंकराचार्य का दत्तात्रेय सहित कैलास गमन

शंकराचार्य का अवतार संपूर्ण होने का समय आ गया। इनकी बत्तीस वर्ष की प्रमाणित आयु पूरी होने को थी। इन वर्षों में सनातन धर्मोद्धारण किया गया, पाखण्ड मतों का खण्डन किया गया और काश्मीर में सर्वज्ञ पीठारोहण भी किया। केदारेश्वर के दर्शन के समय पर दत्तात्रेय का दर्शन भी हुआ। बाद में सारे शिष्य लोगों से विदा लेकर कैलास गमन किया तो कैलास दर्शन से शंकर रोमांचित हो उठे - रजतगिरि पर ऋषि-मुनिगण को शिव-पंचाक्षर मंत्र का एकाग्रता से जप

करते पाया और सारे देवताओं, शिव-शक्ति के दर्शन से पुनीत होकर ब्रह्मानन्द में डूब गये। संपूर्ण कैलाश क्षेत्र में ओंकारनाद और पंचाक्षर मंत्र जप की ध्वनि प्रतिध्वनित हो रही थी और ऐसा सुनाई दे रहा था कि हम यहाँ आपकी रक्षा करने के लिये बैठे हैं। त्रिकरण शुद्धि और एकाग्रता से हमारा चिंतन करो तो आपका योगक्षेम देखना हमारा कर्तव्य है। शंकराचार्य के कैलाश दर्शन से तथा शंकर का शंकर से मिलन के समय देव-गंधर्व, ऋषि-मुनि सभी पुष्प वर्षा करने लगे। यह दृश्य देख दोनों हाथ जोड़कर सिर पर रखकर शिव-शक्ति स्वरूप में विराजमान परमेश्वर का साष्टांग प्रणाम कर और भक्ति पूर्वक शंकर के चरित्र को विविध रागों में आलापन द्वारा राग-रागिनी, राग-पुष्प-माला से भगवान शंकर-पार्वती की पूजा करने से भाग्यशाली बन गये।

धर्मं वर्धयतु

अधर्मं नश्यतु

ओम्

स्वस्तिर्भवतु-पुष्टिर्भवतु-तुष्टिर्भवतु

शान्तिः शान्तिः शान्तिः

ऐंकार ह्रींकार रहस्ययुक्त श्रींकार गूढार्थ महाविभूत्या

ओंकार मर्म प्रतिपादिताभ्या नमो नमः श्री गुरुपादुकाभ्याम्